Barcode : 5990010044261
Title - Anubhav
Author - Satya Dev Paribrajak
Language - hindi
Pages - 90
Publication Year - 1933
Barcode EAN.UCC-13
5 990010 044261

अनुभव

१

एकाङ्ग का पाठ नहीं पढ़ाती,

सर्वाङ्गिनी संस्कृति भारती है;

ब्रह्माण्ड सौन्दर्य्य विभिन्नता में,

जो एकता पालन मानती है।

८११.५
अ

सत्यदेव परिव्राजक

'सत्य-ग्रन्थ-माला' की १७ वीं पुस्तक

लेखक

स्वामी सत्यदेव परिव्राजक

धीरेन्द्र वर्मा पुस्तक-संग्रह

पुस्तक मिलने का पता—

'सत्य-ग्रन्थ-माला' ऑफ़िस,

नई दिल्ली

प्रथमावृत्ति २००० | सन् १९२३ | मूल्य ।=)

'[illegible]' ऑफ़ सि.

नई दिल्ली।

सर्वाधिकार सुरक्षित

प्रथम बार

सितम्बर १९३३

मुद्रक—
रूपवाणी प्रिंटिंग हाउस,
चावड़ी बाज़ार,
दिल्ली।

विषय-सूची

संख्या	विषय			पृष्ठ
१	दुःख का महत्त्व	...	...	३
२	देश-भक्ति-मर्म	...	...	४
३	मृत्यु का स्वरूप	...	...	४
४	पवित्र पुरुष	...	...	५
५	महात्मा गाँधी की महत्ता		...	६
६	धैर्य-धारण	...	...	६
७	अहंभाव की व्याधि		...	७
८	निर्माण-युग	...	...	८
९	अनीति के फल	...	...	१०
१०	सच्चा साधु	...	...	११
११	नर-जन्म हीरा	...	...	११
१२	आदमी चाहिये	...	...	१२
१३	उपदेश-प्रद दोहे	...	...	१३
१४	केसरी जाग	...	...	१५
१५	स्वार्थी जगत	...	...	१५
१६	राहिन-नदी-दृश्य-वर्णन		...	१६
१७	महा-पुरुष कौन है	...	...	१८
१८	हिम्मत	...	...	२३

संख्या	विषय			पृष्ठ
१९	दीर्घ-सूत्रता	...	...	२४
२०	दृढ़ निश्चय	...	...	२४
२१	अविद्या	..	...	२५
२२	दृढ़ व्रत	...	...	२५
२३	क्रोध का फल	...	...	२५
२४	राजनीति	...	...	२६
२५	कुटिल राजनीति	...	...	२६
२६	बदला	...	...	२७
२७	आर्य्य-संस्कृति का स्वरूप		...	२८
२८	अन्न की महिमा	...	...	२९
२९	शक्तिशाली राष्ट्र	...	...	३१
३०	राष्ट्रोत्थान-मन्त्र	...	...	३१
३१	शेखचिल्ली	...	...	३२
३२	मजहबी ढोंग	...	...	३२
३३	सात्विक राजनीति	...	...	३३
३४	व्यायाम के लाभ	...	...	३४
३५	न्याय का दिवाला	...	...	३५
३६	राज्य-शक्ति	...	...	४२
३७	[illegible] मन्त्र	...	...	४३
३८	विकसित समाज	...	...	४३
३९	उन्नत-राष्ट्र	...	...	४४
४०	कोलोन का कार्निवाली मेला		...	४५
४१	लालसागर	...	...	६९
४२	भावी भारत का स्वरूप		...	७३

कुछ शब्द

सत्य-ग्रन्थ-माला के प्रेमियों को यह देखकर सचमुच आश्चर्य होगा कि मैंने कविता का यह पुष्प उनकी भेंट किया है। अभी तक इस माला के सभी ग्रन्थ गद्य में निकले हैं। यदि किसी ट्रैक्ट में मैंने कोई भजन या छन्द लिख दिया, तो वह कविता के नियमों से अनभिज्ञ होने के कारण बिल्कुल अशुद्ध ही रहा था। अब चूँकि मैंने कवियों की कृपा से कविता के नियमों का कुछ अध्ययन कर लिया है, इसलिये अपने भावों को पिंगल के भिन्न-भिन्न छन्दों में प्रेमियों के सम्मुख धरता हूँ। आशा है, मेरे कृपालु पाठक मेरे अन्य पुष्पों की तरह इसे भी अपनाएँगे।

कविता का शौक यों तो मुझे पहले से ही था, पर कई बार यत्न करने पर भी मैं उसे न सीख सका। मित्रवर पं० शुकदेव विहारी मिश्र ने एक बार पं० जगन्नाथ प्रसाद 'भानु' का रचा हुआ 'काव्य-प्रभाकर' नामक ग्रन्थ मुझे दिया था और इच्छा प्रकट की थी कि मैं अवश्य ही उसे पढ़कर छन्द रचना करूँ। परन्तु मेरे यत्न करने पर भी मुझे उसमें सफलता प्राप्त न हुई। जब मैं पिछली बार जर्मनी गया और वहाँ राइन नदी के किनारे उसके रम्य-

स्थलों को देखने का मुझे सुअवसर प्राप्त हुआ, तो कविता करने की वह पुरानी इच्छा अत्यन्त बलवती हो उठी और मैंने एक छोटी सी कविता की पुस्तक की सहायता से कुछ छन्द रचे। जब मेरे घुटने को चोट लगी और मैं घूमने-फिरने लायक न रहा, तब खाट पै पड़ा हुआ ही कविता करता रहता। फल-स्वरूप टाँग पर चोट लगने की घटना—कोलोन का कार्नवाल—को छन्दों में मैंने वर्णन कर दिया। इस प्रकार मेरी कविता करने की प्रवृत्ति बढ़ी। मैं संस्कृत के पुराने छन्दों में कविता करना अधिक पसन्द करता हूँ, यद्यपि नये ढंग की कविता का मैं विरोधी नहीं हूँ, पर [illegible] में संयम की ऐसी ही आवश्यकता है, जैसी कि जीवन के अन्य विभागों में। नया छन्द बनाने का अधिकार सबको है, पुराने कवियों ने छन्द-रचना का ठेका नहीं लिया हुआ था, लेकिन स्वच्छन्दता और उच्छृं-खलता ऐसे दोष हैं, जिनसे जनता पथभ्रष्ट हो जाती है और संगठन टूट जाता है। मौलिकता इसी में है कि हम संयम और संगठन को कायम रखते हुए नवीन रचना करें, जो ज्ञान में वृद्धि कर दे, न कि विरोधी-पथ खोल दे। विरोधी-पथ खुल जाने से वादविवाद और वितण्डा होने लगता है; पार्टियाँ बन जाती हैं और विरोधी दल अपनी शक्तियों को एक दूसरे के दोष दिखलाने में खर्च करते हैं। विकास का मार्ग सबको पकड़ना चाहिए। मैं कवि होने का दावा नहीं करता। मेरे इन छन्दों में दोष भी होंगे, जिन्हें विद्वान् लोग क्षमा करेंगे। मेरे हृदय में यह आकांक्षा है कि उच्च भावों को पद्य में लिख दिया जाय, ताकि जनता उसे कंठस्थ करले और अपना जीवन सुधार सके। जो

कविता किसी की समझ में न आवे, जो मन की उड़ान मात्र हो, जिसमें भावुकता के लच्छे ही लच्छे हों, जिसके कई अर्थ हो सकें, जो स्पष्टता के गुणों से शून्य हो और जो पढ़नेवाले को उच्छृंखल बना दे, मेरी तुच्छ सम्मति में ऐसी कविता एक व्याधि-मात्र है, जो लेखक और पाठक दोनों के लिये हानिकर है। विचार नीरोग, प्राञ्जल, शुद्ध और भावों से भरे हुए हों, तभी वे मानव-समाज को दिव्य पथ दिखला सकते हैं। कवि का उत्तरदायित्व गद्य लेखकों से बढ़ा-चढ़ा है। हिन्दी साहित्य में मौलिक कवियों की बड़ी जरूरत है—ऐसे कवि, जो भारतीय आत्मा को चैतन्य कर सकें। प्राकृतिक सौन्दर्य का आनन्द कलाकार कवि तभी दे सकता है, जब कि वह अपने लक्ष्य को अत्यन्त स्पष्ट देखता है। वह भले ही उपदेष्टा न हो, लेकिन उसका मस्तिष्क उसके भावों को यथातथ्य व्यक्त करनेवाला होना चाहिए। 'लिखे मूसा और पढ़े खुदा'—यह शैली कला की नहीं।

यदि मेरी इस छोटी-सी पुस्तक के पढ़ने से मेरे पाठकों को सुन्दर भावों की प्रेरणा हुई और उनसे उन्होंने लाभ उठाया, तो मैं अपने उद्योग को सफल समझूँगा। निसन्देह मेरे हृदय में अच्छा कवि होने की भावना बड़ी प्रबल है; और मैं अपने जीवन में एक महा-काव्य लिखने का अभिलाषी हूँ। भविष्य तो प्रभु के हाथ में है। यदि ईश्वर इसी प्रकार कृपा करते रहेंगे और पाठकों का सहयोग मिलता रहेगा, तो मेरी यह इच्छा भी किसी न किसी दिन जरूर पूरी होगी।

कविता की इस पुस्तक में अधिकतर मेरे अनुभवों

की छाप है, इसीलिये इसका नाम 'अनुभव' रक्खा गया है। यह सच है कि मैंने दूसरे कवियों की तरह एक ही ढङ्ग के अधिक छन्द नहीं लिखे, क्योंकि मैंने यह देखने का प्रयत्न किया है कि मैं कहाँ तक छन्द-रचना कर सकता हूँ। इसीलिये इस छोटी सी पुस्तक में विविधि प्रकार के छन्दों के नमूने हैं। 'लालसागर' पर जो कविता है, उसमें शायद किसी को अत्युक्ति जान पड़े, किन्तु अधिक यात्रियों का अनुभव 'लालसागर' के विषय में ऐसा ही हुआ है, जैसा कि इस पुस्तक में वर्णित है। पहिले और दूसरे दर्जे के मुसाफिरों को कुछ अधिक सुविधाएँ होने की वजह से शायद 'लालसागर' इतना कष्ट-दायक किसी समय न प्रतीत हो, लेकिन ग़रीब यात्रियों के लिए वह सचमुच बड़ा भयानक है। 'कोलोन का कार्नवाल' मेरे जीवन की ऐसी घटना है, जिसका मैंने अक्षरशः वर्णन किया है। 'न्याय का दिवाला' हास्य-मय कविता है, जो किसी समय भी मनोरंजन कर सकती है। शेष छन्द भिन्न भिन्न विषयों पर हैं, जो अत्यन्त लोकोपयोगी हैं। 'भावी भारत का स्वरूप' मेरे हृदय का स्वप्न है, जिसे परमात्मा सच्चा बनाएँगे। अन्त में, मैं बड़ी नम्रता से अपने छन्द सहृदय-कवियों के सम्मुख धरता हूँ।

नई दिल्ली }
१६-६-३३ }

विनीत—

सत्यदेव परिव्राजक

सप्रेम भेंट — लेखक

दोहा

मात पिता पद रेणु को, निज मस्तक पै धार।
'अनुभव' की रचना करूँ, जनता हित सुविचार ॥

*　　　*　　　*

दुःख का महत्त्व

रात की घड़ियाँ निरन्तर जाग कर,
व्योम के तारे नहीं जिसने गिने;
दुःख से सन्तप्त हो जिसने कभी,
कौर दो खाये नहीं आँसू सने;

आश—ऊषा में नहीं जिसका कभी,
वस्त्र आहों से लगा हो भीगने;
वह हृदय है शून्य रचना-प्रेम से,
वस्तु मौलिक क्या कभी उससे बने?

मर्म जीवन् का छिपा है दुःख में
विश्व-रचना का यही साहित्य है;
है हमारे नाश का इतिहास सुख,
दुःख से उत्थान होना सत्य है।

* * *

देश-भक्ति-मर्म

देश-भक्ति का मर्म छिपा भाषा में,
मधुर नशा पीना हो हर स्वासा में।
भाषा–प्रेम बढ़ाओ हृदय-कमल में,
देश-भक्ति-रवि चमके, अन्तस्तल में।

* * *

मृत्यु का स्वरूप

यह मौत नहीं परिवर्त्तन है,
इस काया के कल-पुर्जों का।
हो अमर नाम के अभिलाषी,
तो जीवन-ज्योति जलाता जा।

* * *

पवित्र पुरुष

(१)

जो दीन-हीन के दुःखों पै,
निज करुणा-स्रोत बहाता है;
इस विश्व-चराचर रचना में,
वह मनुज पुनीत कहाता है।

(२)

उसके यश का वाहन बनकर,
ईश्वर निज भक्ति दिखाता है;
त्रय ताप तपे जग जीवों को,
करुणा-सन्देश सुनाता है।

(३)

बरसा कर प्रेम-सुधा-रस को
मजहब का जहर मिटाता है;
सम भाव सिखा सब जनता को,
देशों के भेद भगाता है।

* * *

महात्मा गान्धी की महत्ता

बाज़ी जीतें खड्ग से, शूर सुने सब ठाँहि।
शत्रु-हीन नायक मगर, किया युद्ध कहुँ नाँहि॥
किया युद्ध कहुँ नाँहि, जगत् को चकित बनाया।
हिंसा के प्रतिकूल, गाँधी ने बिगुल बजाया॥
कहे 'देव' यह कथा, सदैव रहेगी ताज़ी।
गाँधी जी इस बार, अगर जीतेंगे बाज़ी॥

* * *

धैर्य-धारणा

कहीं क्या बेगारी, [illegible] मन्दिर रचे;
भला क्या जल्दी में, मुख निगलना भोजन पचे;
ज़रा धीरे धीरे, सरस सरसी छन्द रचिये;
लगें बीसों घण्टे, खरच करने से न बचिये।

* * *

अहंभाव की व्याधि

अहंभाव की व्याधि,
लगी तरु मानव तन में;
ऋतु पाये अनुकूल,
फैलती सकल बदन में।

भान्ति भान्ति के रूप,
धार जीवन रस चाटे;
घुन बन खाये सार,
आत्म-दर्शन पथ काटे।

महामारि युग की यही,
छपे नाम अख़बार में;
चित्र बिकें चंदा मिले,
जय २ हों बाज़ार में।

* * *

निर्माण युग

जगत में आया युग निर्माण—टेक

बालक माटी कोट बनावे,
लोग कहें नादान।
पर हिय साध जन्म जन्मों की,
पूरी करे अजान।

भूमण्डल रच ब्रह्म दिखावे,
तब जग करे बखान।
वह पद बिन रचना तू चाहे,
रे मूरख नादान।

निर्माण-युग

काव्य कला संगीत इसीसे,
पावें उच्च स्थान।
फल सेवा तप त्याग यही है,
यह जीवन की शान॥

जो नर शूर बने निर्माता,
तिनके कर गुण गान।
रचना ही धन मुक्त जनों का,
'देव' सत्य यह जान॥

* * *

अनीति के फल

जरा पढ़ो तो इतिहास खोल के,
कुचाल से क्या बरबादियाँ हुईं।
प्रभावशाली बलवान राष्ट्र जो,
अहो ! कहीं भी उनका पता नहीं।

कहाँ गया रोम महा पराक्रमी,
उड़ी पताका जिसकी दिगन्त में !
समृद्धिशाली मुगली खिलाफ़ती,
अहो ! कहीं भी उनका पता नहीं !

अनीति अन्याय नहीं कभी फले,
चले न नौका जल बीच काग़ज़ी।
चढ़े न हाँडी द्वय बार काठ की,
मिटे न रेखा कर लाख आज जी।

* * *

सच्चा साधु

वही साधु सच्चा वही सन्त राजा,
सुधारे सदा और के काम काजा।
ख़ुशी से सभी आपदा झेल लेता,
बिना ख्याति के त्याग सर्वस्व देता।

* * *

नर जन्म हीरा

खोया उसी ने नर-जन्म-हीरा,
जो भोग भोगे बन नर्क कीड़ा।
आदर्श ऊँचा गर सामने हो,
यात्री अभागा पथ भ्रष्ट क्यों हो।

* * *

आदमी चाहिये

धनी की नहीं खोज में घूमते,
न लिक्खाड़ के पैर को चूमते;
न विद्वान मक्कार ही चाहिये,
कहीं से खरा आदमी लाइये।

कहाँ है नहीं जो बहे धार में,
रहे जो तना तेग़ की मार में;
सदा जो डटा बीच मैदान में,
सभी वारदे देश की आन में।

मसीतें रहीं रो इमामी बिना,
मठों में मची धूम स्वामी बिना;
शिवाले खड़े हैं पुजारी नहीं,
अहो आज बाँके बिहारी नहीं!

उपदेश-प्रद दोहे

(१)

वाधा वाधा करत है, रे मूरख नादान ।
वाधा का बध बिन किये, क्या पायेगा मान ॥

(२)

जग में पूजा ना मिले, बिना घिसाये चाम ।
रगड़-रगड़ खाकर बने, पाहन शालिग्राम ॥

(३)

पर दुख का बन पारखी, जो जी जान जराय ।
वह खींचे संसार को, चुम्बक चरित बनाय ॥

(४)

जीवन-ज्योति जला गया, प्रिय यतीन्द्र प्रणवीर।
जिसने माता के लिये, अर्पण किया शरीर॥

(५)

राखत नांहि मलीन मन, सज्जन 'देव' उदार।
गुण गहते हैं हंस बन, अवगुण लेत सुधार॥

* * *

केसरी जाग

सर्वस्व तेरा लुट गया,
उठ जाग भारत-केसरी।
अपने नखों को तेज़ कर,
संग्राम को आई घरो ।

* * *

स्वार्थी जगत

नहीं कोई यहाँ अपना,
सभी हैं यार मतलब के।
निकल जब काम जाता है,
बदलते नैन इन सब के।

* * *

राहिन-नदी-दृश्य-वर्णन

(१)

जस मातु गंगे भावना,
हिन्दू हृदय में रम रही;
तस तात राहिन नाद से,
गूंजे बली जर्मन मही।

(२)

पर्वत बनों के बीच में,
लज्जावती राहिन नदी;
बहती बड़ी गम्भीर हो,
जलयान-पोतों से लदी।

(३)

है भव्य भवनों की छटा,
दोनों किनारे सोहती;
सड़कें सघन पादप-मयी,
मन प्रेमियों के मोहती।

(४)

काफ़ी-घरों की धूम है,
हर दाम के होटल खुले;
हो जेब में पैसा अगर,
राहिन किनारे सुख मिले।

* * *

महापुरुष कौन है ?

छन्द मन्दाक्रान्ता

श्री काशी जी, पहुँचकर मैं,
रोज सन्ध्या सबेरे,
लेने जाता, प्रभु भजन का,
स्वाद गंगा किनारे।

था मेले का दिन बहुत से,
लोग स्नानार्थ आए;
सोचा देखूँ छवि मधुर मैं,
आज ग्रामों वनों की।

खाना खाया निज चिर सखा,
रामजी को बुलाके।
दोनों साथी खुश-खुश चले,
घूमने जंगलों में।

क्या शोभा थी, उस समय की,
सूर्य प्यारा सुहाता;
बैठो घूमो, उस रवि-प्रभा में,
न था जी अघाता।

दो मस्ताने, पथ धर चले,
देखते ग्राम्य-लीला।
फूले खेतों पर चुलबुले,
पक्षियों का रसीला—

गाना प्यारा मुदित,
मधुपों की छबीली ढिठाई;
देती शिक्षा बस धुन,
लगे तो सके हो कमाई।

छन्द शिखरणी

चले आगे आगे, मुदित मन आलाप करते।
कहीं भोले भाले, गृह-पशु लखे घास चरते।
लगा भीना भीना, मृदु पवन सानन्द बहने।
तभी साथी बोला—"वह तरु अहा ताज पहने!"

छन्द भुजंगी

फिरा नेत्र जो सामने दृष्टि डाली,
दिखाई पड़ी वृक्ष-दीवार काली।
उसी में खड़ा एक झण्डा सुहाता,
सभी पास के पादपों को दबाता।

छन्द सरसी

जब आए हम रम्य कुञ्ज में,
देखा दृश्य अजीब;
हैं सब वृक्ष ताड़ के सम्मुख,
सिर सिनत किये ग़रीब।
निज लघुता का ज्ञान सभी में,
रमा हुआ बलवान;
उपजाता दर्शक के मन में,
करुणामय कम्पान।

उन्नत मुख नभ में फैलाकर,
दर्प भरा यह ताड़—
मानो कहे द्रुमों को तुम हो,
अनुचर मैं सरदार।
साथी बोला चकित नेत्र से,
"देखा चित्र विचित्र।
क्या रहस्य इसका है, मुझको,
बतलाओ हे मित्र ?"

दोहा

हँसकर तब मैंने कहा, सुनो रामजी तात।
कहूँ तुम्हें तरुवर हमें, शिक्षा क्या सिखलात॥

छन्द शिखरणी

मिली शिक्षा कैसी, अब तुम सुनो कान धर के;
चलें जल्दी काशी, पथ सुगम हो बात करते।
यहाँ पावें पूजा, नर बन महा भेद उनका;
बताता है प्यारे, तरुवर हमें मन्त्र गुन का।

सोरठा

यान महाजन लोग, इस भवसागर गहन के।
वही तरन के जोग, सच्चा लक्षण पायें जो॥

मनहरण दण्डक

ताड़ के समान हैं महान वे अनेक लोग,
जो खड़े मनुष्य कुञ्ज पै ध्वजा उड़ाते हैं।
जाइये समीप आप देखिये अजीब बात,
अन्ध-भक्त ख्याति गाय डुग्गियाँ बजाते हैं॥
देखले उठाय आँख जो कहीं ज़रा महान,
धन्य भाग्य मान शीस दास हो झुकाते हैं।
नीचता अछूत लाघवीयता भरें कुभाव,
'देव' ज्ञानवान वे महान् नहीं कहाते हैं॥

कुण्डलिया

वे नर पुंगव हैं महा, वही शाह सिरताज।
जो निज विमल चरित्र से, उन्नत करें समाज॥
उन्नत करें समाज यथा चन्दन करता है।
चहुँ दिशि चारु सुगन्ध, वृक्षगण में भरता है॥
कहे 'देव' उत्थान, हो जिनके सतसंग से;
जो भरदें सम भाव, महापुरुष हैं सत्य वे॥

* * *

हिम्मत

(१)

क्या चीज़ थी वह पराजित ब्रूस को जो,
लाई नई कड़क से फिर खेत में यों ?
मानो बही प्रबल धार पहाड़ियों की,
थी एक शक्ति वह हिम्मत के गुणों की।

(२)

नारा बजा अकबरी जब चार कोने,
क्षत्री छिपा मुँह पड़े रनवास में थे;
बेहाल होकर लगे जब वीर रोने,
मेवाड़ का वह प्रताप उठा गदा ले॥

(३)

भाई ! सुनो मन लगा कर बात मेरी,
चाहो बने सफलता बिन दाम चेरी;
लो मन्त्र-मोहन जपो—"विजयी बनेंगे !
आवें हज़ार विपदा तब भी लड़ेंगे।"

❀ ❀ ❀

दीर्घ-सूत्रता

वह भर कर आहें सर्द बोला मुझे यों—
"यह ग़फ़लत ही का है नतीजा उठाया;
'बस कल कर लूँगा,' था यही राग मेरा,
दिन गुज़र गये वे हाय! क्या हाथ आया।"

* * *

दृढ़ निश्चय

(१)

है जय पाता,
जो यह ध्याता—
"मैं कर लूँगा
या तन दूँगा।"

(२)

सच्चा ख़ज़ाना,
विश्वास लाना।
इच्छा बलो तो,
संसार जीतो॥

* * *

अविद्या

तेरी अविद्या,
है एक बाधा ।
उत्थान तेरा,
जो रोकती है ।

❀ ❀ ❀

दृढ़ व्रत

दृढ़ होकर, भय खोकर;
बस जा डट, करके हठ ।

❀ ❀ ❀

क्रोध का फल

बन कर क्रोधी, सब पत खोदी ।
अब पछताता, कुछ न सुहाता ।

❀ ❀ ❀

राजनीतिज्ञ

(१)

राजनीतिज्ञ है, चाल से भिज्ञ है।
काल से पूर्व ही, शत्रु के चोट की ॥

(२)

राजनीतिज्ञ हो, शत्रु से भिज्ञ हो।
जीतता चाल है, देश का लाल है ॥

* * *

कुटिल राजनीति

धर्म या नीति से, धौर्त्त्य या प्रीति से।
शत्रु को मारिये, देश को तारिये ॥

* * *

बदला

(१)

मत दर्प लाना, बदला चुकाना ।
नर नारियों की, इस बेकसी का ।

(२)

रिपु लाख भी हों, कितने बली हों ।
नर सिंह होके, झपटो सभों पै ।

* * *

संस्कृति-प्रचार

(१)

वे चले विदेश वीर,
राष्ट्र-भक्ति में अधीर ।
उच्च-भाव देह धार,
विश्व-भारती प्रचार ।

(२)

जा बसा दिये प्रदेश,
सिन्धु-पार द्वीप देश।
आर्य्य-सभ्यता पवित्र—
की ध्वजा उड़ाय मित्र!

* * *

आर्य्य-संस्कृति का स्वरूप

एकाङ्ग का पाठ नहीं पढ़ाती,
सर्वाङ्गिनी संस्कृति भारती है;
ब्रह्माण्ड-सौन्दर्य विभिन्नता में,
जो एकता पालन मानती है।

* * *

अन्न की महिमा

(१)

कबीले उठे अन्न की चाह में,
मरे काफ़िले सैकड़ों राह में;
बसी बस्तियाँ जंगलों में कई,
पुरानी उजाड़ी बसाईं नई।

(२)

अहो! अन्न है शक्तिशाली महा,
लिये घूमता प्राणियों को कहाँ!
सभी सभ्यताएँ ग़ुलामी करें,
बने मूक विद्वान् पानी भरें!!

(३)

गए हिन्द से टापुओं में कुली,
न रोटी जिन्हें देश में दो मिली।
सहे सैकड़ों दुःख इन्डेनचरी,
बुरी गालियाँ और मारें पड़ीं ॥

(४)

हज़ारों मरे जंगली ताप से,
अभागे बड़ी दूर माँ-बाप से।
फ़िजी द्वीप में हाय लाशें सड़ीं,
ट्रिनीडाड में हड्डियाँ जा गड़ीं ॥

(५)

जला पेट तो रोटियाँ खोजता,
नहीं ज्ञान की गुत्थियाँ खोलता।
यही है समस्या बड़ी बापुरी,
सभी को मिलें रोटियाँ दो खरी।

* * *

हिन्दुस्तानी एकेडमी, उ० प्र०
५८८२
पुस्तकालय
इलाहाबाद

राष्ट्र

महा शक्तिशाली वही राष्ट्र होता,
न आलस्य में जो कभी काल खोता।
सदा वीर्य्य व्यायाम से जो बढ़ाता,
वही 'देव' स्वाधीन आनन्द पाता॥

*　　*　　*

राष्ट्रोत्थान-मंत्र

राष्ट्र उत्थान हो योग्य सन्तान से,
वीर विद्वान् नीतिज्ञ धीमान से।
त्याग-आदर्श हो राज्य के मूल में,
शक्ति-तृष्णा न व्यापे कभी भूल में।

*　　*　　*

शेखचिली

केवल ही मन मोदक खावत,
शेखचिली सम बात बनावत ।
कौर नहीं पड़ता मुख भीतर,
उद्यम के बिन काम बनें कब

* * *

मज़हबी ढोंग

जब फ़ादर जी गिरजाघर वाले,
धनवान रुचे बतिया बतलावे;
जब धर्म, पुरोहित, पंडित जी के,
कर की पुतली बन नाच नचावे;

जब बाँध क़ुरान गले बिच दो-दो,
मिरज़ा इस्लाम दुकान चलावे;
तब 'देव' ग़रीब भला फिर कैसे,
इस ढोंग मज़ाहब के ढिग जावे ?

* * *

सात्विक-राजनीति

(१)

प्रेम हो स्वदेश का, न द्वेष और राष्ट्र से,
सत्य और न्याय-भक्त होय राजनीति में;
गुट्ट-कीच दम्भ चाल पास आ सके नहीं;
श्रेष्ठ है वही मनुष्य भीरु जो अनीति में।

(२)

सामना लबार धूर्त्त शत्रु से जभी पड़े,
हारिये कभी नहीं बनो जयी रहो खड़े;
ढाल लो अवश्य हाथ शत्रु के विनाश की,
'देव' है सुनीति सत्य, जीत होय आपकी ॥

* * *

व्यायाम के लाभ

देह को नीरोग रखना है अगर,
तो खुले मैदान में व्यायाम कर।
जब विनोदी वीरता का खेल हो,
स्वर्ण और सुगन्ध का तब मेल हो।

मित्र को ले सैर करने जाइये,
चित्त प्रेमालाप से बहलाइये।
व्यर्थ ही व्यायाम अपना जानिये,
जो इसे बेगार के सम मानिये।

शूरता के खेल मन हर्षित करें,
देह में बल तेज पौरुष को भरें।
इत्र-यौवन का नहीं वे सूंघते,
'देव' आलस में पड़े जो ऊंघते।
नेम से व्यायाम को नित कीजिये,
दीर्घ जीवन का सुधा-रस पीजिये।

*　　*　　*

न्याय का दिवाला

दोहा

फैला जब यूनान में, घोर वितंडावाद।
बोले तब दिक्पाल सब, रहे तर्क आबाद॥

भुजङ्गी

(१)

कथा 'देव' ने मित्र से है सुनी,
कि एथन्स का एक बाँका धनी;
खड़ा था लिये हाथ में आरसी,
कहे—"आज दाढ़ी लगे खारसी।"

(२)

पुकारा बड़े ज़ोर से भृत्य 'ओ!'
"ज़रा ला बुला जल्द हज्जाम को।"
गया वेग से भृत्य दौड़ा हुआ,
उसे शीघ्र ही साथ लाया बुला।

(३)

धनी ने कहा—"देख हज्जाम रे,
ज़रा आज जल्दी करो काम रे।
शिला पै छुरा तेज़ भी ख़ूब हो,
बना बाल ऐसे मचे धूम जो।"

(४)

सफ़ा बाल नाऊ बनाने लगा,
मज़ेदार गप्पें सुनाने लगा।
लगा ताकने जो घुमाया छुरा,
धनी तो गिरा चीख़ के "मैं मरा।"

कुंडलिया

आ पहुँची फ़ौरन पुलिस, धरा गया हज्जाम।
उस दिन पुर एथन्स में, मचा घोर कुहराम॥
मचा घोर कुहराम, धनी मानी जन सारे,
गए जज्ज के पास, क्रुद्ध हो बैन उचारे।
कहे 'देव' यह सार, उनके क्रोधी कथन का,
दो फाँसी बिन देर, नीच होश में जाँय आ॥

तारक

जब बीच अदालत में वह नाऊ,
अपराधि बना नत-शीस खड़ा था।
उसके पट तो सब रक्त सने थे,
वह तेज़ छुरा रिपु पास पड़ा था।

पुरवासि सभी दल के दल आए,
चहुँ ओर खचाखच ठट्ठ जुटा था।
बलवान् धनी सरदार सभी का,
वह पाक लहू अब खौल रहा था।

सोरठा

ख़ूब शान के साथ, आए न्यायाधीश जब।
उठे हज़ारों हाथ, गूंजा जय-जय घोष तब॥

मन्दाक्रान्ता

क़ैदी आया, नत शिर किये,
जज्ज हो क्रुद्ध बोला—
"ख़ूनी है तो, सच सच बता,
क्यों बना दुष्ट भोला।"

बोला क़ैदी, हसरत भरे,
नैन दोनों उठाके—
"मारा मैंने, पर प्रभु वरो नहीं,
योग्य हूँ मैं सज़ा के।
धीरे-धीरे अति सम्हल के,
बाल था मैं बनाता;
देखा आती तरुणी चपला,
सुन्दरी एक बाला।
नारंगी से बसन पहिने,
झूमती झामती को;
जल्दी घूमा उचक कर मैं,
ताकने जो परी को।
मारा मैंने, पर प्रभुवरो !
है नहीं दोष मेरा;
दोषी है जो वह मदभरी,
मारती नैन टेढ़ा।"
"हाँ! हाँ!! हाँ!!!" की ध्वनि सुन,
पड़ी हॉल में से प्रजा की—
"लाओ जल्दी" पुलिस-दल ने,
हुक्म पाया नवाबी।

भागे, लाये, पकड़ युवती को,
किया पेश ज्योंही;
गर्जा क्रोधी दल, तब कहा—
जज्ज ने—"बोल क्योंरी!

घूमे है क्यों बनकर परी,
नैन बाँके चलाती;
देखा तेरी मधुर छबि,
मैं आज कैसी खता की।"

कुंडलिया

"अपराधी प्रभु मैं नहीं, यह दर्जी का काम।"
युवती बोली जज्ज से, "बसन सजावे चाम॥
बसन सजावे चाम इसे सारा जग जाने।
विना वस्त्र जो रहे, जंगली तिनको माने॥"
कहे 'देव' सुन तर्क, जज्ज की लगो समाधी।
गूँजा हॉल तुरन्त—"नहीं तरुणी अपराधी!"

सोरठा

पड़ी पुलिस की मार, पकड़ा जब दर्जी गया।
करने लगे पुकार, "मारो इस बदमाश को।"

मन्दाक्रान्ता

"क्यों रे दर्ज़ी ! यह बसन,
तू है बनाता फिरे जो,
ख़ूनी दंगे इस नगर में,
क्यों हों बला के बता तो ?"

न्यायाधीशी वचन सुनके,
जोड़ के हाथ दोनों,
दर्ज़ी रोया—"जुरम उसका,
है नमूना दिया जो।

जानूँ मैं क्या, कम समझ हूँ,
सुन्दरी की अदा को,
काटूँ सीऊँ, बस कर सकूँ,
जो नमूना मिला सो।"

"छोड़ो दर्ज़ी" अब मच गया
शोर भारी प्रजा में,
दौड़े भागे सब पकड़ने
मूल था जो कज़ा में।

कुंडलिया

फाँसी-घर लाया गया, जल्द नमूनेबाज़ ।
पर भावी के खेल में, छिपा हुआ था राज़ ॥
छिपा हुआ था राज़, द्वार फाँसी का छोटा ।
वह लम्बा छै फ़ीट, हुआ अब भारी टोटा ॥
चला 'देव' जब तर्क, जज्ज को आयी खाँसी ।
कहा—"द्वार प्रतिकूल, नहीं हो सकती फाँसी ॥"

* * *

दोहा

आख़िर फाँसी पर चढ़ा, एक अभागा दास ।
"रहे तर्क आबाद" ! से, गूँज उठा आकास ॥

* * *

राज्यशक्ति

धन-बल से भरपूर प्रजा को,
राज्य - शक्ति हैं कहते ।
राष्ट्र सुरक्षित वहाँ, सुखी हो,
लोग जहाँ के रहते ।

हो जनता संगठित, राज्य का
दृढ़ भविष्य तब जानो ।
पुरस्कार अच्छे शासन का,
प्रजा-भक्ति को मानों ॥

* * *

स्वाधीनता-मन्त्र

जो जनता उठकर कहती है,—
"नहीं सहेंगे अत्याचार;
नहीं विदेशी शासन को अब,
कभी करेंगे हम स्वीकार।
चाहे माल हमारा ले लो,
चाहे दो लाठी की मार।"
उसकी दासी बन स्वतन्त्रता,
कर बाँधे रहती तैयार।

* * *

विकसित समाज

जब प्रजाजनों में प्रेम परस्पर आवे;
जब निर्धन को धनवान स्वयं अपनावे;
जब पठित अपढ़ के पास दौड़कर जावे;
नारी जब समुचित मान, राष्ट्र में पावे।
तब समाज को निश्चित विकसित जानिये;
'देव' उसे संगठित मार्ग पर मानिये।

* * *

उन्नत-राष्ट्र

सुखी प्रजा उस राज्य में,
जहाँ भली सरकार।
हर्षित मन प्रभु को भजैं,
रक्षित हों अधिकार॥

रक्षित हों अधिकार,
प्रजा पै राजा निर्भर।
शासन का सब काम,
चले जनता के बल पर॥

कहे 'देव' वह राष्ट्र,
उन्नति करे चतुर्मुखी।
शासन सबल मशीन,
प्रजा बसे जिसमें सुखी।

* * *

कोलोन का कार्नवाली मेला

(भूमिका)

*बसी बस्ती वैडें, अति निकट कोलोन नगरी;
वहीं से पत्री में, पद रच कही बात सगरी।
विदेशी होली के, फल कविवरो सम्मुख धरे;
प्रभो! हिन्दी माता, प्रथम कविता स्वीकृत करे॥

कोलोन का परिचय

(१)

रोमनी साम्राज्य का
सिक्का जमा शाही जभी;
छावनी रोमाँ तभी
बस्ती बनी कोलोन की।

---

*यह कविता भाई जगन्नाथजी थापर के पत्र के उत्तर में रची गई थी, जिसे पाठकों के विनोदार्थ दिया जाता है।

सैकड़ों आए गए
धारा बहाई ख़ून की;
राह्नि प्यारी नदी
देखे नज़ारे चूँ न की।

(२)

देख लो संसार का,
क़ानून ऐसा आह्नी;
निर्बलों को काटते,
चालाक योद्धा दानवी।

है पला कोलोन यों-ही
रक्त के मैदान में;
फ्रांस, रोमाँ, जर्मनी के
वीर क़ब्रिस्तान में॥

(३)

अन्त में कोलोन पै,
झंडा उड़ाया जर्मनी।
फ़ौज का अड्डा तथा,
व्यापार की मण्डी बनी।

रोमनों की छावनी,
लो ! हो गई देवापुरी।
भव्य ऊँचे डोम से,
कोलोन की शोभा बढ़ी।

* * *

कथा-प्रारम्भ

सुनो तात जगन्नाथ !
आया तव पत्र हाथ।
मिले सभी समाचार,
धन्यवाद बार बार ॥

यही थी कामना मेरी,
चलूँ भारत बिना देरी।
बहुत दिन होगए अब तो,
ख़तम हैं काम भी सब तो।

बाबू शिवप्रसाद के साथ,
परिचय बहुत पुराना नाथ।
वे आए थे पत्नी-संग,
[illegible] पर्वत-शृंग।

अनुभव

प्रेम पत्र जब उनका आया।
मैंने भी प्रोग्राम बनाया।
आखिर हमने निश्चय कीना।
अच्छा है अप्रैल महीना।

जून जुलाई मास,
उठे मनसून भयङ्कर।
अरब सिंधु मदमत्त,
डरावे नाग फुफंकर।

कड़क गड़क कर मेघ,
गगन-भेदी गरजीला।
जन
जल-वाहन थर्रात,
देख यह दानव-लीला।

यही सोच अपरैल में,
घर जाने की बात।
निश्चय कर कैबिन लिया,
'गांगे' में हे तात!

प्रबल हुई भावी सदा,
नियम जगत विख्यात ।
'गांगे' नामक बोट में,
थी जाने की बात ।

थी जाने की बात,
खूब प्रोग्राम पकाया ।
मास भला अप्रैल,
यही निश्चय ठहराया ।

कहे 'देव' कविदास,
घटी एक घटना अटल ।
कहूँ तात क्या बात,
अहो! बाम बिधना प्रबल ।

सम्भव है तुम कहो,
भला हुआ जो नहिं आए ।
भारत में हैं आज,
सितम के बादल छाए ।

पकड़ धकड़ है मची,
दीन भारत में भारी।
सहसा नित वारन्ट,
पुलिस करती है जारी।

* * *

बचन सत्य है तात तुम्हारा।
दमन- चक्र पापी हत्यारा ॥
देश-भक्ति का बाग़ उजाड़े।
लूट मचावे धर्म्म बिगाड़े ॥

* * *

मैं हूँ अधम महान,
मोहन-मन्दिर मिल सके!
पुण्यशील गुणवान्,
आवे जन्म-स्थान-रज।

* * *

होता है कोलोन में,
मेला कारनवाल।
वहीं बाम बिधना हुआ,
बतलाता हूँ हाल।

बतलाता हूँ हाल,
हुआ जो सोमवार निश।
मारच का दिन तीन,
बना त्योहार मुझे विष।

कहे 'देव' कविदास,
अगर मैं घर में सोता।
भला सोचिये तात!
हाल क्यों ऐसा होता।

* * *

क्रिसमस ही के बाद,
चले यह कारनवाली माया।
सब रोमन देशों में जाता,
यह त्योहार मनाया।

पर कोलोन सभी से आगे,
इसमें पैर बढ़ावे।
दूर दूर देशों की जनता,
फाग देखने आवे।

तीन रात दिन पूरी छुट्टी,
इसी लिये है मेला ।
युवती के तुम अधर चूमलो,
पैसा लगे न धेला ।

जो मेले के स्वाँग-वेश में,
घूमे तरुणी नारी ।
होटल, गली, मुहल्ले में तुम,
चुम्बन के अधिकारी ।

* * *

इस मेले के फल पकें,
अक्तूबर के अन्त ।
कहते तब कोलोन में,
जन्में जीव अनन्त ।

* * *

कामदेव के रंग,
खिलते हैं बहुरूप में ।
रह जाते हैं दंग,
सभ्य असभ्य सभी मनुज ।

कोलोन का कार्नवाली मेला

नाच घरों में लगी चमकने,
आभा बाल विनोद ।
बाजे स्वर संगीत सरस अति,
मोहक मधुर प्रमोद ।

रंग बिरंगे वस्त्र पहिनकर,
युवा-युवतियाँ सङ्ग ।
लगे मचाने होली भोली,
पो जीवन की भङ्ग ।

भाँति भाँति की पोशाकें थीं,
देश देश के रूप ।
अद्‌भुत स्वाँग भरे मस्ताने,
बने निशाचर भूप ।

कारनवाली तीन दिनों में,
धर्म कर्म धर ताक ।
ईसा के रोमानी चेले,
खूब उड़ावें ख़ाक ।

*   *   *

रात को नर नारियों से,
नाचघर भरने लगे।
मस्त हो जैसे पतंगे,
दीप पर मरने लगे।

राह्निनी-मद के पियाले,
टंटना बजने लगे।
चुर्ट फक्फक डब्बियों से,
कूद कर जलने लगे।

स्वाँग भर दल नारियों के,
चमूचमा चलने लगे।
मस्त जन बनकर रसीले,
रात भर जगने लगे।

है मची सब होटलों में,
धूम कारनवाल की।
'देव' मूरख जन लुटाते,
सब कमाई साल की।

* * *

अब आए वे तीन दिन,
जब मेले का ज़ोर।
होली की ऊधम धड़क,
मची तात चहुँ ओर ॥

* * *

जुलूस का वर्णन

(१)

प्रात:काल जलूसा निकला,
कारनवाली मेला आय।
भाँति-भाँति के रूप रसीले,
नर-नारी सब लिया सजाय ॥

(२)

अपनी-अपनी नाच-मण्डली,
जुदा-जुदा सब स्वाँग बनाय।
निकले ठाठ-बाट से बाहिर,
धूम-धड़का खूब मचाय ॥

(३)

मैं भी घर-मालिक से बोला,
दीजे यह मेला दिखलाय।
चले सबेरे हम सब मिलकर,
पहुँचे निकट डोम के आय ॥

(४)

बैंक-भवन के ऊपर चढ़ कर,
सबने आसन दिया जमाय।
लगे देखने स्वाँग जलूसा,
हर्षित मन हो ध्यान लगाय ॥

(५)

दर्शकगण भी दूर-दूर के,
नगर-निवासी देखन धाय।
गली-मुहल्ले हाट-बाट सब,
चींटी-दल से गए भराय ॥

(६)

जिसजिस मारग गया जलूसा,
मोटर-ट्राम न चले चलाय।
देखन वारे घर-खिड़किन में,
अपनी गरदन दई झुकाय ॥

(७)

रंग-बिरंगे साँप काग़ज़ी,
लड़के-लड़किन तब फहराय ।
लगे उड़ाने उन नागों को,
नीचेवालों पर पटकाय ॥

(८)

कारनवाली राज सवारी,
एक अनोखी शान दिखाय ।
सुन्दर नर-नारी मतवारे,
चले गए निज चाल नचाय ॥

(९)

फ़ौज–सिपाही ख़ूब नाचते,
निज पुरखन के रूप बनाय ।
आए ग्राम-ग्राम के वासी,
अपने झण्डे ले फहराय ॥

(१०)

इक लम्बा-सा बड़ा पुलीसा,
दो लाठिन पै पग ठहराय ।
भावी पुलिसमैन क्या होगा,
उसका ख़ाका दिया दिखाय ॥

(११)

इस विधि निकले ये मस्ताने,
बाजे गाजे ख़ूब बजाय।
स्वाँग जलूसा देखा सारा,
सन्ध्या को घर पहुँचे आय।

* * *

तात आज मैं ख़ूब थका था।
मेले से भर चित्त चुका था।
सोचा, कहीं नहीं जाऊँगा।
सोने में ही सुख पाऊँगा।

पर विधना तो ताक रहा था।
व्यंगों से हिय चाक रहा था।
आज नाच-घर ले जाऊँगा।
टाँग तोड़ कर बिठलाऊँगा।

* * *

दुर्घटना की शङ्का

जाऊँ क्या मैं नाच-घर,
हिय में धुक-धुक होय।
यही सोच मन में बसा,
सूझत बात न कोय॥

* * *

हृदै मन्दिर बजाता है,
जभी सन्देह का डंका।
उसे चेतावनी समझो,
निकट में है दुखद पंका॥

बनो चैतन्य तुम भैया,
हटो जल्दी कुमारग से।
बचो उन साथियों से तुम,
डिगावें जो सुमारग से॥

* * *

इस अवसर पर आगए,
घर के मालिक राम।
बोले चलिये नाच घर,
टिकट मिलें बेदाम॥

* * *

मुफ़्त माल है फन्दा, रे नादान ।
बहुधा यही लगावे, वह शैतान ॥
पच्छी बालक, तिरिया, मीन अजान ।
मुफ़्त माल के लोभी, खोवें प्रान ॥
निर्भय वही विचरते, सिंह समान—
जो निर्भर अपने पर, पुरुष महान ॥
बनते सदा जगत् में, कुशल प्रवीण ।
जो जग में जीवें रह, वीर अदीन ॥
यदि इच्छा करने की—राष्ट्र-सुधार ।
मुफ़्त माल के भोगी, हैं जो भार—
उन लोगों का अब तू कर मत मान ।
स्वावलम्ब की जै-जै, 'देव' बखान ॥

* * *

नाच-घर में रात को

मारच की थी तीसरी,
सोमवार की रात ।
होली यह कोलोन की,
याद रहेगी तात ॥

* * *

(१)

निशा नौ के द्वारे,
जब हम घुसे नाच-घर में;
प्रभा भासे जैसे,
रवि चमकता दोपहर में।

ध्वजायें मेले की,
विहग बन बैठीं भवन में;
करें बातें धीरे,
युवक-युवती प्रेम धुन में।

(२)

भरा देखा मैंने,
भवन नर-नारी-तरुण से;
बने जो मस्ताने,
मधुर रस संगीत-ध्वनि से।

घुमाते पैरों को,
कल सम चलें ताल-सुर में;
मुखों पै लाली थी,
कसरत सधे चुस्त उर में।

(३)

छबीले रंगीले,
बसन पहिने नाच-घर में;
युवा घूमें जैसे,
मधुप रमते फूल-बर में।

जिसे भाते लाते,
भुज-भर मिलें नृत्य करने;
कुमारी प्यारी भी,
हँस-हँस लगें साथ चलने।

* * *

(१)

जलूस पूरा कर शाह आ गये,
बड़े सजीले सरदार साथ में;
बने हुए थे पटधार नारदी,
अजीब झंडे फहराय हाथ में।

(२)

प्रवेश कीया जब शाह हॉल में,
प्रसन्नता का जय-घोष हो पड़ा।
बजे सुरीले स्वर स्वागतार्थ में,
मज़ाक होली सब ओर छा गया।

(३)

खड़ा हुआ मैं सब देखता रहा,
बहार लीला इस रास-रंग की;
मुक़ाबिला भारत-होलिका किया,
अनेक धारा मन में नई बहीं।

* * *

दुर्घटना

(१)

ऐसे मैं तो अलग अपने,
ध्यान में था अकेला;
साथी मेरा बन तुरक-सा,
देखता नाच मेला।

सोचा मैंने, सब लख लिया,
कार्नवाली झमेला;
आओ जल्दी, घर पर चलें,
हो नहीं तो अबेला।

(२)

देखा नारी परिचित मुझे,
सोच में जो खड़ा यों;
बोली–"आहा ! बस मिल गए,
आज तो ख़ूब 'देवा !'

छोड़ूंगी मैं, हरगिज़ नहीं,
रास-लीला बिना तो;
चाहे कैसी ज़िद तुम करो,
होय वोही कहा जो ।"

* * *

पकड़ लिया भुज से मुझे,
घुसी रास के बीच;
व्याधा जिमि आखेट पशु,
ले जाता है खींच ।

* * *

कभी अन्त गम्भीर,
होते घुटना तुच्छ के;
चित्र यही आख़ीर,
मानव-जीवन चाल का ।

* * *

(१)

दुखित परवशी हो,
मैं लगा नाचने जो,
पग बहुत थके थे,
टाँग टेढ़ी गई हो ।

घिस-घिसकर जाता,
सकुचाता हुआ मैं;
प्रथम यह नचाया,
नाच नारी बली हो ।

(२)

अति विनय क्षमा से,
मुक्त हो मैं वहाँ से;
निकल प्रथम खोजा,
साथ वाले सखा को ।

मिलकर हम दोनों,
प्यास आए बुझाने;
मिनरल—जल—सोडा-
पान का थान था जो ।

(३)

खनिज जल भराया,
ग्लास मैंने उठाया;
तनिक मुँह लगाया,
कान में शब्द आया।

"डउन विद् ग्रटीना",
जीत का ग्लास पीना।
सुन अचरज आया,
राज़ मैंने न पाया।

* * *

परिचित मेरा था नहीं;
जो बोला यों बैन।
भावी के क्या रंग हैं,
फरका बाँया नैन।

* * *

बिदा माँग के हाथ मैंने मिलाये,
कहा-"मित्र, अच्छा हुआ, आज आए।

मिला है मुझे आज ऐसा मसाला;
बनेगी मनोहारिणी छन्द-माला ।"

* * *

(१)

साथी दो रखवार ले भवन से,
नीचे चला चूर हो,
दाँये थी युवती [illegible],
बाँये सखा तुर्क था ।

दोनों ने पकड़ी भुजा उतरने,
नीचे लगे सीढ़ियाँ,
द्वारे के बस पास ही उलट के,
दाँया पड़ा पैर हा !

(२)

एड़ी से झटका उठा कड़क का,
धक्का लगा पेट में;
मानो भोंक दिया छुरा तुरत ही,
काटा सभी जोड़ को ।

कन्धों पै धर भार मैं लटकता,
दो साथियों से चला;
लेटा मोटर में बड़ी कसक से,
टूटी हुई टाँग ले।

* * *

(उपरोक्त घटना का अक्षरश: सत्य वर्णन मैंने पाठकों के सामने रख दिया है।)

* * *

इस कविता में लालसागर का वर्णन पाठकों के सामने सवैया छन्द में दिया जाता है, सम्भव है कि कुछ पाठकों को इस वर्णन में अत्युक्ति जान पड़े। परन्तु अधिकांश सैलानियों का व्यक्ति गत अनुभव लाल सागर के विषय में ऐसा ही हुआ है। अब ज़रा लालसागर का वर्णन सुनिये।

लालसागर

स्टीमर भारत से जब लेकर,
माल-मुसाफ़िर योरप जाता।
है करता अपना मुँह पश्चिम,
एडन छः दिन में पहुँचाता।

बन्दरगाह यही पहला दर,
रक्त-समुद्र प्रवेश कराता।
नाविक जा कहते सब को यह,
सागर लाल भयानक आता।

* * *

अनुभव

हैं करते सुख के सब साधन,
विद्युत्-चक्र समीर बहाते।
भानु-शिखा दुख वारण कारण,
केवट डेक कनात लगाते।

सूट सफ़ेद सजे सबके तन,
आतप से निज देह बचाते।
'देव' मुसाफ़िर तो सब के सब,
लो इतने पर भी घबराते।

❀ ❀ ❀

सागर लाल कहें इसको सब,
दानव आँत महा भयकारी।
पूरब में चमके अरबी मरु,
भूमि बनी जिमि काल कुठारी।

पश्चिम में नुबिया-नरकानल,
तेज़ चले अति उष्ण बयारी।
फैल रहा बलुआ अफ़रीकन,
दच्छिण ओर प्रदेश सँहारी।

❀ ❀ ❀

यात्रि सभी ऋतु में सहते दुख,
पार करें जब सिन्धु विकारी।
है पर ग्रीष्म कठोर भयङ्कर,
तीन निशा दिन डायन भारी।

सूरज की किरणें बरसें बन,
आग भभूकन की चिनगारी।
'देव' गिनें घड़ियाँ सब के सब,
पार करें कब लाल बुखारी।

❀ ❀ ❀

डूब मरें दुखिया तन पीड़ित,
वात निदाव चले जब घाती।
व्याधि बने दुगुनी ज्वरदायक,
कष्ट असह्य जले जब छाती।

मौत भली इस जीवन से बस,
उष्ण बला न सही अब जाती।
पीर शरीर मिटे उनको तब,
'देव' मिले जब सिन्धु समाधी।

❀ ❀ ❀

आयत सागर है शत तेरह,
मील हमें बुध लोग बताते।
स्टीमर से तपते बलुआ थल,
शैल खड़े अति शुष्क दिखाते।

था उनका पहले यह मारग,
दास-तिजारत जो करवाते।
'देव' अनर्थ लखे जल ने सब,
वीर गुलाम मरे उतराते।

* * *

उत्तर छोर बहे मुददायक,
स्वेज नवीन कला जलधारा।
फ्रेंच डलेसप के यश का ध्वज,
जोड़ दिये द्वय सिन्धु-किनारा।

भूमध सागर का जल शीतल
आतप दूर करे अब प्यारा।
भारत द्वार खुला सब के हित,
है जग का पथ स्वेज दुलारा।

* * *

भावी भारत का स्वरूप

लावनी

(१)

क्यों घबराते हो प्यारे तुम,
स्वर्ण समै वह आवेगा।
विजयी भारत का यह झण्डा,
फिर जग में फहरावेगा।

नहीं रहेगा ऊँच-नीच यह,
जाति-भेद भग जावेगा।
एक एक बच्चा भारत का,
यह झण्डा अपनावेगा।
हिन्दू मुस्लिम और ईसाई अपना भेद भगावेगा।
विजयी भारत का यह झण्डा फिर जग में फहरावेगा॥

(२)

बड़े बड़े राजा महाराजा,
और नवाब कहाते हैं।
ज़िमीदार पूँजीपति सारे,
ज़ुल्मी हुक्म चलाते हैं।

छोड़-छोड़ कर निज रुतबा वे,
भारत—अलख जगावेंगे।
सब मज़दूर किसान तभी तो,
अपनी भूख भगावेंगे॥

वह समता का राज्य जगत् में,
नया प्रेम युग लावेगा।
विजयी भारत का यह झण्डा,
फिर जग में फहरावेगा॥

(३)

मुख्य विदेशी नगरों में तब,
हिन्दी-बैंक चलायेंगे।
मारवाड़ि, बनिये, गुजराती,
खोई लक्ष्मी लायेंगे।

अरबी सागर, हिन्द-सिन्धु में,
[illegible] बनायेंगे ।
व्यापारी–स्टीमर भारत के,
सभी माल पहुँचायेंगे ।

भारत का वह् गया ज़माना,
पुनः लौट कर आवेगा ।
विजयी भारत का यह् झण्डा,
फिर जग में फह्रावेगा ॥

(४)

प्रजा-हितैषी शासन होगा,
जनता नियम बनायेगी ।
प्रजा—पक्ष तो सेवक होंगे,
जनता राज्य चलायेगी ।

वे नेता भारत जनता के,
शासक पदवी पायेंगे ।
जो सेवा बलिदान त्याग में,
अपना नाम कमायेंगे ।

सभ्य-जगत् में तभी हमारा,
श्रेष्ठ राष्ट्र कहलावेगा।
विजयी भारत का यह झण्डा,
फिर जग में फहरावेगा॥

(५)

बर्लिन, पेरिस, नालिन्दा-से,
यहाँ खुलेंगे विद्यालय।
लाखों छात्र पढ़ेंगे जिसमें,
और कहेंगे भारत जै।

नगर, ग्राम, क़स्बों में सब थल
सुन्दर, क्रीड़ालै होंगे।
बालक, बूढ़े, युवा, युवतियाँ,
जिनमें जाकर खेलेंगे।

बूढ़ा भारत नये सिरे से,
तब तरुणाई पावेगा।
विजयी भारत का यह झण्डा,
फिर जग में फहरावेगा॥

(६)

ख़ैबर से बर्मा तक सारा,
मध्य हिमालय-लंका का ।
इस जननी भारत की रक्षा,
करे वीर वह है बाँका ।

[illegible] का दिव्य चित्र यह,
हृदय-पटल पर लिख लेना ।
राष्ट्र-एकता की रक्षा हित,
तन मन धन सब दे देना ।

जो तोड़ेगा देश एकता,
वह ग़द्दार कहावेगा ।
विजयी भारत का यह झंडा,
फिर जग में फहरावेगा ।।

(७)

भारत के नभ-यान उड़ेंगे,
गौरव-याद दिलायेंगे ।
ले आदर्श राम केशव का,
आगे पैर बढ़ायेंगे ।

तब जौहर देखेगी दुनियाँ,
कैसे हैं वे बलशाली ?
सिक्ख, डोगरे, राजपूत नर,
जाट, गोरखे, बंगाली ।

न्याय-सत्य के बल पर भारत,
पूर्ण शान्ति फैलायेगा ।
विजयी भारत का यह झण्डा,
फिर जग में फहरायेगा ।

(८)

योरुप के अच्छे गुण लेकर,
निज गुण साथ मिलाकर हम ।
नई सुसंस्कृति को रच देंगे,
राष्ट्र-धर्म फैला कर हम ।

निर्बल सबल सभी को जग में,
जीने का अधिकार मिला ।
भैंस उसी की लाठी जिसकी,
देंगे यह पशु-नियम मिटा ।

लूट-मार गुण्डेपन को तो,
भारत जल्द हटायेगा।
विजयी-भारत का यह झण्डा,
फिर जग में फहरावेगा॥

(९)

कोलम्बो के बन्दर को तब,
जंगी केन्द्र बनाकर हम।
सिन्धु-कराँची को दृढ़ करके,
सरहद-प्रान्त बसाकर हम।

भारत को ऐसा कर देंगे,
जहाँ सुखी हों नर-नारी।
दया-धर्म की करें पालना,
और वीर हों बलधारी।

इसी भूमि का दर्शन करने,
सभ्य-जगत् तब आवेगा।
विजयी भारत का यह झण्डा,
फिर जग में फहरावेगा॥

(१०)

सत्यदेव कहता है सुनलो,
मैं घूमा हूँ देश विदेश ।
निसन्देह हैं इस भूमी पर,
सुन्दर-सुखद सुरम्य प्रदेश ।

पर षट्-ऋतु, बन, नदी, हिमाल
जहाँ सभी हों ऐसा देश
नहीं मिलेगा इस पृथ्वी प
चाहे करलो यत्न विशेष

धन्य वही भावी भारत हित,
जो जी जान लड़ायेगा ।
विजयी भारत का यह झण्डा,
फिर जग में फहरायेगा ।

तथास्तु